अंबेदकर जयंती

हिन्दी ADDA

ज़ेब अख्तर

अंबेदकर जयंती

मुर्गे की बाँग तो ठीक से सुनाई पड़ी पर भिन्सार हुआ कि नहीं, इसमें संदेह था। मटमैला और गमकता उजाला तो चारों ओर था पर सूरज भगवान का कहीं अता-पता नहीं था।

दुलारी पासवान खपरैल वाले ओसारे से निकल कर मोहाल घर में आ गए। गैया को हाँकते हुए, कुछ गिने-चुने टिमटिमाते तारों पर नजर गई तो उनका शक और गहराने लगा। कुछ देर तक आकाश को यूँ ही निहारते रहे फिर जैसे अपने आप से बड़बड़ाए, 'दुत, अब रात हो कि दिन... बिछौना छोड़ दिया तो छोड़ दिया। एक टोकरी काम पड़ा हुआ है करने के लिए... शुरू कर देते हैं चलकर अभिए से!'

दाँतों में नीम का दातुन दबाए, हाथ में लोटा लिए वह सरकारी इंदारा; कुआँ की ओर चल पड़े। पर रास्ते में महसूस हुआ कि दिशा-फरागत की भी अभी कोई जल्दी नहीं है। तो फिर क्या किया जाए? गांधी मिडल स्कूल के पास पहुँचकर वह विचारने लगे। तभी उनका ध्यान स्कूल के प्रांगण में गया... मिट्टी के विशाल चबूतरे पर। अभी कल ही टोले के सभी बड़े-बूढ़ों ने मिलकर उसे बनाया था। आज मेहरारू लोगों को इस पर गोबर लीपना था। और आज ही तो होनी थी सभा, अंबेदकर जयंती के उपलक्ष्य में। इसी चबूतरे को तो मंच के रूप में इस्तेमाल किया जाना था।

पर चबूतरे का एक कोना टूटा हुआ था। लगा किसी ने जान-बूझकर यह काम किया है। वह थोड़ा और निकट गए... जानवर का भी काम हो सकता है। सियाल-सियार भी तो आते ही रहते हैं। पास ही तो जंगल-झाड़ है। जो हो, अब इसे मरम्मत तो करना ही पड़ेगा। कहाँ तो उनको कोई काम नहीं सूझ रहा था। यहाँ... एगो नए काम धरा हुआ है। अंधे को जैसे दो आँखें मिल गईं। वह धोती को घुटने तक ऊपर ले जाकर लग गए उसे सुधारने में।

ठीक ही हुआ जो भोर से पहले आँख खुल गई। स्कूल के बरामदे में वह कुछ तलाशने लगे। शायद कुदाल और कढ़ाई। मिट्टी काटकर लाना होगा। नहीं मिला तो निकले किसी तलाश में। महर टोली वालों में कोई जागता हुआ मिल ही जाएगा। तभी सुअरों को बहराता हुआ चनेसर दिखा। उसे कुदाल-ओड़ी लाने का आदेश देकर खुद मेढ़ की ओर निकल पड़े... जहाँ से मिट्टी काटकर ढोना था।

लेकिन नहीं, बात महँगी पड़ी। सामान तो उन तक पीछे पहुँचा। चबूतरा टूटने वाली बात हरिजन टोला में एक-एक घर तक पहले पहुँच गई कि मंच को किसी ने तोड़

दिया है। कि वे सभा नहीं होने देना चाहते। कि हम भी पता लगाकर रहेंगे किसने की है यह बदमाशी!

टोले के लोग झुंड के झुंड पहुँचने लगे, जहाँ दुलारी मिट्टी खोदने में लगे हुए थे। क्या जवान और क्या बूढ़े, मेहरारू और दूध पीते बच्चे तक... असहज होते-होते सकते में आ गए दुलारी, इतने सारे लोगों को एक साथ जमा होते देख, जबकि सभा आरंभ होने में अभी देरी है। उनके माथे पर पसीने की दो-चार बूँदें और छलक आईं। उन्हें अंगोछे से पोंछते हुए किसी अशुभ की आशंका से घिर गए। भगवान जाने अब का हुआ ससुरन को!

मामला जानने के बाद उन्होंने भीड़ को दुत्कारा, 'दुत, ई भी कोई बात हुआ गुस्सा आने का? और मान लो इ कोई लुच्चा बदमाश का ही काम है तो यही समय है पता लगाने का! जब जो काम जरूरी हो तभी करो। चलो-चलो दिन भर का काम पड़ा हुआ है। अभी मिट्टी कट गया है इसको ढोने का बंदोबस्त करो फिलहाल!' वह बालेश्वर की ओर मुड़े - 'बालो, कुर्सी का प्रबंध हुआ कि नहीं? सबसे ज्यादा फिकर हमको इसी बात का है। सुनते हैं दसियों जगह मनाया जा रहा है अबकी अंबेदकर जयंती, मीना टेंट हाउस वाला का कुर्सी पहले से बुक है। बसंत टेंट वाला भी पहले ही मना कर चुका है...'

'हाँ, हम बासदेव को बोल दिए हैं... आगे चट्टी पर एक नया टेंट वाला दुकान खुल गया है... उ ले आवेगा साइकिल पर चर-चर गो करके।' बालेश्वर ने खैनी ठोंकते हुए कहा - 'टेंट हाउस का अब कमी रह गया है इलाका में!'

'तब ठीक है... और टेबुल?'

'हेडमास्टर साहेब वाला टेबुलवा कब काम आवेगा? उसी पर सब माइक और गुलदस्ता रखा जाएगा। निकलवा लेंगे उसी को।'

'निकलवा का लेंगे अभी चल के निकलवा लो। अब का फिर से दिन घुरेगा इ सब काम के लिए?' बोलते-बतियाते वह वापस स्कूल पहुँच गए। उसी चबूतरे के पास चनेसर सधे हाथों से उस पर परत-दर-परत मिट्टी चढ़ा रहा था। गीली मिट्टी को थपथपाते हुए उसने पूछा, 'सुनते हैं हमनी के विधायक कामता बाबू मंत्री भी बन गए हैं।'

'हाँ रे... सच्चे सुना है तू... कामता सिंह मंत्री हो गए हैं। ग्रामीण विकास मंत्री। गाँव तो गाँव जिला भर के लिए इ गर्व की बात है।' चनेसर के सिर पर ओड़ी अलगाते हुए उन्होंने दर्प से कहा - 'उनका उपकार है कि सभा में आने के लिए राजी हो गए। नहीं तो ऐसा-ऐसा कितना प्रोग्राम उनखर पाकिट में रखल रहता है।'

चनेसर ने काम रोक दिया और उनकी ओर लालायित होकर देखने लगा, जैसे वह अभी से अनुग्रहित हो रहा है। पर चनेसर का यह हाल देखकर दुलारी पासवान बिगड़ उठे, 'अब इतना भी होने का जरूरत नहीं है... समझा! इ प्रजातंत्र है, उ मंत्री बने हैं तो हमरा वोट के बल पर ही। अब हमरे लिए इतना भी नहीं करेंगे... हुंह!'

'सो तो ठीक है बड़े भैया... मगर हैं तो बड़े लोग ही न... मालिक! का भुला गए तुम भी?'

'मालिक-वालिक कुछ नहीं... बस्स मंत्री है ऊ जनता के सेवक, और हम जनता हैं। घुसा तेरे दिमाग में कुछ!'

विपरीत दिशाओं वाला यह समीकरण चनेसर के लिए अनसुलझा ही रहा। अनमना-सा वह फिर से अपने काम में जुट गया। अब दुलारी भैया कह रहे हैं तो ठीक कह रहे होंगे। इस निष्कर्ष तक पहुँचते-पहुँचते कुछ हल्का होता है चनेसर का मन।

बैसाख की पहली और तीखी किरणों ने ठीक उसी समय दुलारी पासवान के चेहरे पर प्रहार किया... तीर की भाँति सीधे उनकी आँखों पर। कुछ बोलने के बजाय वह चनेसर को विचित्र आँखों से ताकने लगे। जैसे वहाँ चनेसर नहीं कोई और बड़ी समस्या खड़ी हो गई हो। कुछ देर के बाद उनके मुँह से बोल निकले। गाढ़े तरल की भाँति, रुके-रुके, धीर-गंभीर।

'चनेसर, जब अभी से तेरा इ हाल है तो तू मंत्री जी से हाथ कैसे मिलाएगा? कैसे बोलेगा माइक पर... कैसे संबोधित करेगा जनसभा को, ...और हमको तो इसमें भी शक है कि तुम मंत्री जी के सामने माँगों को गिना भी पाओगे... जबकि तुम सचिव हो। हमारे अंबेदकर कल्याण समिति के सचिव!' बोलते-बोलते जैसे उनके चेहरे पर दुनिया भर का अफसोस, दुनिया भर की दयनीयता उभर आई।

चनेसर को उनकी स्थिति समझने में कुछ क्षण लग गए, 'हम कर लेंगे दुलारी भैया... सँभाल लेंगे सब... पिछला सभा में हम बोले थे कि नहीं? भले माइक नहीं था। अपनी माँगों और समस्याओं को कैसे भूल सकते हैं हम!' वह माइक पर बोलने का अभिनय करने लगा, चबूतरे पर चढ़कर - 'माननीय मंत्री जी... अधिकारीगण व साथियो... मैं आभार व्यक्त करता हूँ आप सबके प्रति...'

उच्चारण और भाषा की शुद्धता पर दुलारी पासवान किंचित् अचंभित हुए। क्षोभ कुछ कम हुआ। निराशा तनिक दूर भागी। और उनकी आँखों में चबूतरे पर खड़े चनेसर की जगह कोई और बिंब उभरने लगा। उनकी नजरें कुछ और देखने लगीं।

...अभी कितना दिन गुजरा है**?**

जब इसी कामता सिंह, छोटे मालिक के घर में रोज बैठकी हुआ करती थी। रामनवमी के झंडे का मौका हो या मुहर्रम के ताजिया का, कोई झगड़ा झंझट हो या कोई और आरोप-प्रत्यारोप किसी भी तरह का विवाद हुआ तो यही बैठकी विचार-विमर्श की सभा बन जाती। मन-मुटव्वल हो तो आपस में मिलने-मिलाने का बहाना बन जाता। न्याय गुहार की पंचायत बन जाती। दुलारी पासवान को याद आते हैं वे दिन। स्टिल फोटोग्राफी की तरह सामने आते हैं एक-एक चित्र... तब छोटे मालिक के पिताजी श्यामता प्रसाद सिंह जिंदा थे।

फसल कटने के बाद अगहन से बैठकी का जो सिलसिला शुरू होता तो फिर सावन तक यानी बरसात आरंभ होने तक चलता। साँझ होता नहीं कि गाँव के सभी बड़े-बूढ़े ठाकुर के खलिहान की ओर निकल पड़ते। धोबीखोरी, चमटोली, महरटोली, धनखेरी से लेकर बामन टोली तक के लोग जमा होते थे यहीं। एक ओर फसलों के गट्ठर, अनाजों की ढेरी... बिहन के धान पड़े होते। दूसरी ओर एक चारपाई पर ठाकुर साहब होते। हुक्का गुड़गुड़ाते हुए। उनके साथ कुछ दूसरे ठाकुर लोग और साव... बनिया लोग होते।

चारपाई के सामने ही गोबर से लीपी हुई जमीन पर पलथी मारे बैठते वो। वो, यानी भुइंया, कहार, दुसाध... रजक रविदास... घर के लोग। बड़कन के सुर में सुर मिलाते।

बात-बात में बत्तीसी झलकाते। हाँ, वही यानी नीची जाति के लोग। हरिजन, ओछ... अछूत।

बिना उद्वेलित हुए याद करते हैं दुलारी। चालीस के बाद कहाँ गुस्सा और कहाँ आक्रोश। फिर ठाकुर साहब के यहाँ से नाश्ता आता। भुना हुआ चावल, चना, चुड़ा... मूढ़ी। किसी-किसी दिन चाय भी मिल जाती। अब सभी लोगों के लिए वह भी रोज-रोज कौन सेव-दालमोठ का खर्च उठा सकता है। सो वह वहीं तक सीमित रहता। चारपाई तक।

फिर ठाकुर साहब चल बसे। दुलारी पासवान हृदय से कहते हैं भगवान से - उनको स्वर्ग में स्थान दे। जात-कुजात, ऊँच-नीच, धर्मी-अधर्मी तो तब भी थे। मगर क्या मजाल जो कभी किसी ने अपनी सीमा तोड़ी हो। कभी किसी की बेजा महत्वाकांक्षा ने सिर उठाया हो।

ठाकुर साहब ने भले ही चारपाई पर बगल में नहीं बैठाया, या उन्होंने कभी खुद भी नहीं सोचा मगर रहे तो हमेशा ही उनके परिवार की तरह। शादी ब्याह हो या मरनी-जीनी, तीज-त्यौहार हो या कोई भी और मौका, सभी नेग वह पूछ-पूछकर जरूरत से ज्यादा देते। सतीश नाई का... टोले भर में मात्र उसी का ही मकान ढलाउवा और ततला है। मगर पूछो उससे, वह जमीन किसकी है। बड़े ठाकुर ने ही दिया था नेग में। नस्ल-दर-नस्ल वो दाढ़ी हजामत जो बनाते आ रहे थे ठाकुरों की। इसी तरह धोबी, कहार, दर्जी... कितने लोग पलते थे उनके आसरे पर, चिंता मुक्त होकर। जब भी जरूरत पड़ी ठाकुर साहब ने खुद बुलाकर पूछा।

रही न्याय-अन्याय की बात। तो कब नहीं रहा यह? कोई कह सकता है... सृष्टि के आरंभ से आज तक। रूप और बहाने बनते-बदलते रहे बस। कभी इसने धर्म का चोला पहना तो कभी कानून का मुखौटा लगा लिया। अन्याय से पृथ्वी कभी खाली नहीं रही। फिर भी न्याय की अन्याय पर जीत तो हमेशा होती रही है। और हमेशा होती रहेगी। हाँ, दीगर बात है कि उसके लिए भी साहस चाहिए। त्याग और बलिदान की शक्ति चाहिए। दधीची का ही किस्सा ले लो। दानवों के नाश के लिए उनको अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी या नहीं?

उसी तरह रंजन बहू को भी समझ लो इंदारा में कूदकर... नहीं... नहीं इंदर देवता ने ही माँगा था बलिदान उसका। गाँव को कोप-प्रकोप से बचाए रखने के लिए। वह ऐसा-वैसा बलिदान नहीं था। यह बलिदान था एक नवब्याहता के सपनों का, उसकी खुशियों और अरमानों का और हम हरिजन टोला के लोग इसे अकारण नहीं जाने देंगे। थान पर एक खस्सी उसके यानी सोनरिया के नाम से भी कटेगा इस बैसाख से। हाँ, ठाकुर साहब की मंशा भी यही है। और क्या कहा था उन्होंने? हाँ, याद आया। जैसे आकाश में मेघ टकराते थे। उसी तरह आवाज ऊँची उठती गई थी ठाकुर साहब की, 'खबरदार जो इस घटना का जिक्र दोबारा किसी की जबान पर आया। हाथी बनकर पेट में पचा लेना है इसको! गाँव की शांति सभा खतरे में पड़ सकती है। और गाँव का हर मरद यह भी सुन ले कि रंजन गोड़ाइत भी हमारा बेटा जैसा है। हम उसका लगन फिर से कराएँगे। अपने खर्चे से। दावत-दारू और गाजा-बाजा के साथ।'

रंजन के बाबूजी गद्‌गद हो उठे थे। गाँव का कण-कण मालामाल हो उठा था। और घटना भी कितनी सी, देखो! अरे, आज के लिए होगा यह जुलम और अन्याय। कल तक तो यह परंपरा और रीति-रिवाज का ही हिस्सा था। और रीति-रिवाज क्या ऐसे ही टूटते हैं? ऐसे ही धराशायी होती हैं परंपराएँ! ऐसे ही छूटती है आदत! पान-बीड़ी की आदत को छोड़ने में सालों लग जाते हैं। और यह तो... फिर चाहिए पक्का इरादा और साहस। रंजन बहू ने पहले किया था साहस, किसी ने किया था इसका विरोध!

सभी जानते थे। सभी मानते थे। जिला भर का चलन था यह तो। छोटी जातियन के यहाँ विवाह होता तो पहलर न्यौता ठाकुर साहब को दिया जाता। और घूँघट की पहली सेज उन्हीं की हथेली में सजाई जाती। लाल जोड़े में सजी दुल्हन की पालकी पहले उन्हीं के दरवाजे पर लगती। फिर वह आशीर्वाद देकर विदा कर दें दुल्हन को या नेग के लिए रोक लें, उनकी मर्जी।

पालकी के साथ खुद दूल्हा भी होता था हाथ जोड़े। विनय की मुद्रा में। कि 'हे अन्नदाता, हे पालनहार, उद्‌धार कर दो हमारा भी। इ हमारा तन-मन-धन सब आप ही का है। इ हमारी बहू की पत्नी है कि लक्ष्मी है, इस पर भी पहला हक आप ही का है!'

ऐसा ही कुछ कहा होगा रंजन गोड़ाइत ने उस समय कि तभी घूँघट में छिपी सोनरिया की चंचल आँखें लहर उठी थीं। पोर-पोर जलन से भर उठा था। नया चेहरा, नई जगह और तिस पर नए बोल... शौच के बहाने से एकांत पाकर निकल पड़ी थी वह हवेली से। दूसरे दिन सोनरिया की लाश कुएँ से बरामद हुई थी। उँगलियाँ हवेली की ओर उठने लगी थीं। खुसर-पुसर होने लगा था। थाना पुलिस के बारे में तक सोच गए थे हरिजन टोला के हरिजन। मालूम पड़ते ही ठाकुर दौड़े-दौड़े आए। अचानक हवा का रुख बदला हुआ पाया। सदियों से जमा मैल की परत छूट कैसे गया? उन्होंने लोगों को मनाया, पुचकारा, मिन्नत-समाजत की, हाथ तक जोड़कर खड़े हो गए। किसी तरह अशुभ टला। गाँव की मर्यादा दागदार होने से बची। किंतु अंदर ही अंदर विभाजन की लकीरें खिंच गई थीं दिलो-दिमाग पर। छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, अर्थ-अनर्थ... जैसी कितनी रेखाएँ खींच गया था सोनरिया की माँग से धुला हुआ सिंदूर। राम-सलाम... पाए लागूँ... जय सरकार की... सब चल रहा था। मगर एक हूक, एक आक्रोश के साथ। खलिहान की बैठक में भी उन लोगों ने जाना बंद कर दिया था। एक ही झटके में वीरान हो गया था लंबा-चौड़ा खलिहान। उसकी शोभा, उसका सौंदर्य।

साँझ बेला जब ठाकुर खलिहान पहुँचते तो दो-तीन जन से अधिक लोग वहाँ नहीं मिलते। और वे भी वो ही, चारपाई पर बैठने वाले। सामने की खाली जगह, खाली धरती उन्हें जैसे मुँह चिढ़ाती रहती। काटने को दौड़ती। धीरे-धीरे सहिया साहू और बनियों ने भी आना छोड़ दिया। ठाकुर साहब को भी बैर हो गया खलिहान से जैसे। जरूरत पड़ती तो भी जाने से कतराते।

बिस्तर पर के मरीज की तरह लाचार और अपाहिज हो गए थे ठाकुर श्यामता प्रसाद सिंह। कभी बीसियों गाँव की जमींदारी करने वाली विरासत का यह हाल! यह दुर्गति! कि कोई खैर-खबर लेने वाला नहीं। परिवार के लोगों को क्या गिनना। लड़ते रहते अपने अकेलेपन से। मन होता, भंभाड़ रोएँ या तान लें दोनाली अपने सीने पर।

और देखो, अनर्थ इतने पर ही जाकर नहीं रुका। एक और बिजली गिरी फिर। एक और पहाड़ टूटा सीने पर। सुनने में आया, गाँव में एक अलग बैठकी होने लगी है हरिजन टोला में। टोटन पासवान के यहाँ। सब अपनी सुनाते हैं, अपनी कहते हैं। देर रात तक

चलती है बैठकी। खूब हा-हा, ही-ही होता है। टोटन का बेटवा भी आया हुआ है कोलवरी से। वहाँ मिस्त्री है किसी मोटर गैराज में।

जाने क्या-क्या बताता फिर रहा है सबको। डॉक्टर अंबेदकर... शिक्षा... संगठन। कुछ किताबें भी लाया है। बैठकी में सुनाता है पढ़कर। गांधी जी को बनिया कहता है। और हरिजन शब्द को लॉलीपाप माने लेमनचूस... माने लड़कन बच्चन को फुसलाने का सामान। कहता है, अब तो जगना होगा। फिर कमर कसना होगा। और इ भी जान लो कि इ लड़ाई अंतिम है। जीते तो जीते नहीं तो नामो-निशान मिट जाएगा हमारा। राम राज लाया जा रहा है देश में। माने उ मनु भगवान का राज। जानते हो का होगा फिर...?

मगर इसका काट भी तैयार है। सेर का सवा सेर है कि नहीं। आरक्षण मिलेगा हमको। हर जगह। पढ़ाई में, नौकरी में... राजनीति में, हर जगह।

वापिस जाते-जाते न जाने क्या-क्या भर गया था छोटे-छोटे दिमागों में वह बित्ता भर का लड़का। वह खुद ही तो थे दुलारी। दुलारी पासवान... वल्द टोटन पासवान।

ठाकुर साहब बड़बड़ाते हैं। न जाने किससे कहते हैं, तुम कहते हो ऊँच-नीच। हमरे गोतिया का बेटा रामसिंह लटपटा गया था हरमू कहार की बेटी से। गर्भ ठहर गया था बदमिया को। हमने जात-कुजात भुलाकर दोनों का ब्याह रचाया कि नहीं। सुनते हैं कोलवरी में दोनों मजे से रहते हैं। यहाँ गाँव में बस नहीं पाए। कभी इ ताना तो कभी उ ताना। एक दिन गोली चलने की नौबत आ गई। हमने उनको रात भर शरण दिया। शहर भिजवाया दूसरे दिन। तब जान बची दोनों की। तब लाज बची गाँव के एका की। तो बनाया की नहीं हरमू को समधी। पूरा सम्मान दिया उसको। अब उ हमरे सामने खाँसता नहीं... हमरे सामने बैठता नहीं... धोती भी घुटने के नीचे नहीं बांधता तो इसमें का हमारा कुसूर है?

तो भैया खाली राजा हो जाने से नहीं होता है। प्रजा को संतान से बढ़कर मानना पड़ता है। हाँ, गलत माँग रहे तो उसे डाँटना भी पड़ता है। कभी मिन्नत चिरौरी भी करनी पड़ती है। हाँ, मिन्नत-चिरौरी और ठाकुर साहब आ धमके थे टोटन के दरवाजे पर।

नहीं, टोटन पासवान की दहलीज पर। चौंक पड़े थे उनको वहाँ एकाएक खड़ा देखकर लोग। जैसे अहिल्या का उद्धार करने चलकर आए थे राम स्वयं।

वह खुद आगे बढ़े। कंधा थपथपाया। हाथों को खोज-खोजकर हाथ में लिया। खड़े रहे सभी साँस रोके। मेहरारू लोग दाँत में उँगलियाँ दबाए ओट में अलग खड़ी रहीं। न-सब्री कई आँखें छलछला आई थीं, इस राम और भरत जैसे मिलाप पर। वर्षों का प्रेमभाव कोई ऐसे थोड़े ही समाप्त हो जाता है। ऐसे थोड़े ही पीछा छोड़ता है। इंदारे के सिलपट पर निशान पड़ा जैसा है यह तो।

यही कहा था कई जुबानों ने। ठाकुर साहब वहीं धूल पर बैठने लगे थे। उन्हीं लोगों के साथ। मगर जैसे फिर कई जुबानें बोल पड़ी थीं एक साथ - 'इ अनर्थ मत कीजिए मालिक! आपका स्थान तो दूसरा है। अरे, झट से लाओ चारपाई... और चद्दर साफ वाला। का बोला, टोटन के घर में चद्दर नहीं है... तो फलनवा के घर से ले आवो। कहीं से भी लावो भाई।' छोटे-मोटे युद्ध जैसी अफरा-तफरी मच गई थी। फिर दौड़ी आ गई थी भारी-भरकम चारपाई, चार आदमियों के कंधे पर सवार होकर। लो मुड़तरवा यानी तकिया भी चला आ रहा है, भूसी वाला नहीं... रूई वाला।

एक ओर खड़ा था टोटन। शर्म से डूब मरे कहीं जाकर या भाग्यवान समझे अपने आपको - समझ नहीं पा रहा था उसका दिमाग। बार-बार यही ख्याल आता कि इसी तरह दो-चार ठाकुर आ जाएँ तो का गत होगा उसका!

छोड़ो यह सब। यहाँ तो महफिल जम गई थी। मन कैसा-कैसा तो लगता था ठाकुर साहब की अनुपस्थिति में। अब जाकर भरा-भरा सा लगा जी। हाँ, इ हुआ ना बैठकी का मतलब। पसर गए हैं ठाकुर साहब खटिया पर। और फिर जैसे ललकारता है सेनापति अपनी सेना को। हवा में हाथों को लहराकर कि 'हाँ, अब शुरू करो बैठकी!'

देखो तो भला कैसे शोभ रहे हैं! कोई कह सकता है कि इ मालिक नहीं हैं। इ राजा नहीं हैं। गाली भी देते हैं तो मिसरी का घोल लगता है कानों में। और प्रजा? प्रजा भी है अपने स्थान पर। चारपाई के सामने बैठी हुई। बहाल हो गया सब कुछ पहले का,

पूर्ववत्। रोज ही आने लगे थे ठाकुर साहब। सुलझाया जाने लगा था फिर सारा झोल-झमेला, वाद-विवाद इसी बैठकी में पहले की भाँति।

हाँ, एक चीज खटकती थी सबको, एक ही चीज नहीं सोहाता था सबको। ठाकुर साहब के खलिहान में जो बैठकी होती थी, उसमें चावल, चना या कुछ भी भुंजौना मिल जाता था नाश्ते के तौर पर। भर लेते थे पेट वहीं। मगर टोटन की औकात से तो यह बाहर था। बीस-पच्चीस जन के लिए भुंजौना का प्रबंध करना मजाक था क्या? बहुत हुआ तो किसी-किसी दिन किसी की तरफ से चाय चल गया, बस। संतोष करो इसी पर। हाँ, इससे आगे का चमक्का नहीं लगेगा।

मगर ठाकुर साहब तो ठहरे ठाकुर साहब। बड़े आदमी, ऊपर से अगिनि देव समान। इसके ऊपर टोटन, एक पासवान के वहाँ उनका आना। सब ऐसे ही मरे जा रहे थे कीड़े-मकौड़ों की तरह। तो भला उनके लिए कम से कम जलपान का प्रबंध तो करना ही था। और सभी जानते थे ठाकुर साहब का जलपान कहाँ से आता है। कुच्चन हलवाई के यहाँ का सेव, दालमोठ और उसी के हाथ से बनी खालिस दूध की चाय। साथ में कोई एक मीठा। यानी डेढ़ सौ रुपये की चपत रोज। अब क्या करें?

पारी बांधा जाने लगा। सबके जिम्मे एक-एक दिन। कायदे से देखा जाए तो महीने में एक दिन पारी घूमता। पर कई लोगों ने पहली बार में ही हाथ पसार लिया। दबाव डाला तो जवाब मिला, 'इ जुलुम मत करो। कहो तो हम बैठकी में आना ही बंद कर दें। बैठकी न हुआ कि सिनेमा और सर्कस हो गया कि भैया यहाँ बैठना है तो टिकट का दाम देना ही होगा। इससे तो बढ़िया ठाकुर साहब के खलिहान में ही बैठते थे।' मगर अब क्या हो सकता था! प्रतिष्ठा भी कोई चीज है कि नहीं। और प्रतिष्ठा में कहते हैं कि प्राण तक गँवा देते हैं लोग। एक-एक पैसा जोड़कर किसी तरह आने लगा दालमोठ रोज। होती रही बैठकी भी। और तब तक हुई जब तक ठाकुर साहब जिंदा रहे। बैठने के लिए लोग फिर भी बैठते। मगर कहाँ वे झड़ीदार ठहाके, कहाँ वह हा-हा-ही-ही! वे गालियाँ, वह मसखरापन, वे ताने... बिदर गया सब कुछ उन्हीं के साथ। ग्रहण लग गया गाँव की खुशियों को।

याद करते-करते नम हो उठती हैं दुलारी पासवान की आँखें। हाथ में लिए गीली मिट्टी पर लुढ़क पड़ती हैं दो बूँदें। चनेसर की नजरों से किसी तरह बचाते हैं नजर। संयमित करते हैं खुद को। भाव में बहने लगे हैं वह। यह कोई अच्छी बात नहीं। सालों के अनुभव ने यही सिखाया है उनको। जागता है मन का चेतन। सचेत होते हैं फिर से। मनाते हैं अपने गोपन को फिर। कि दफन रहो जहाँ हो वहीं। काठी जैसे हृदय को लोहा बनाने का यत्न करते हैं दुलारी।

झिड़कते भी हैं अपने आपको कि क्या कहकर अंबेदकरवादी हैं वह? जब स्व का नियंत्रण ही नहीं हो पाता उनसे। भगवान न करे, इसी अवस्था में मौत हो गई तो क्या मुँह दिखाएँगे परलोक में अंबेदकर बाबा को। हाँ, परलोक यानी प्रलय। माने भगवान का द्वार। इस पड़ाव पर उतरने से पहले प्रायः भटक-भटक जाते हैं वह। कोलिवरी में मिले थे एक डॉक्टर, डॉक्टर वरुण। पटना जिला के रहने वाले। कहते थे परलोक, स्वर्ग नरक बहलावा है। ढकोसला है सब। धरम का जकड़न है। असल चीज तो मन की शुद्धि है। चाहे जैसे प्राप्त कर लो यह शुद्धि। हाँ, शुद्धि माने निर्वाण। इसी से तो बाबा अंबेदकर बौद्ध हो गए थे। डॉ. वरुण भी बौद्ध हैं। कहते हैं बुद्ध के उपदेश धर्म नहीं, विचार हैं। विचारधारा हैं।

गजब लगता है दुलारी पासवान को कि बिना धरम-करम के भी जी सकता है कोई? घाट पर स्नान कर जब जप करते हैं तो मन कैसा तृप्त हो उठता है। जैसे संसार भर का सुख पा लिया हो। कोई मोह माया डिगाता नहीं है मन को।

तब बोले थे डॉ. वरुण, 'इसी तरह का सुख और इसी तरह की तृप्ति दिशा फरागत के बाद भी मिलती है। तो क्या इसी को धरम मान लिया जाए?'

बाँस की घिरनी की तरह घूम गया था दुलारी पासवान का माथा। डॉ. साहेब होंगे सही अपनी जगह पर। वहाँ कोलिवरी में कोई पूछने वाला नहीं है तो चल जाता है इ सब। गाँव में इ सब चलने वाला नहीं है। और मान लो उनकी बात सही है। हो जाते हैं हम भी बौद्ध। तो कौन सुनेगा मेरी बात? कहीं ऐसा न हो कि आम जाए और साथ में लबेदा भी चला जाए। न राम मिले न माया। हाँ रहने दो इ सब शहर तक ही। वह ढेर पढ़ल-लिखल आदमी है। कोई दखल नहीं देता है किसी के मामले में। बल्कि हम तो

कहते हैं - क्रिसचनवन सब अच्छा काम कर रहा है। धरम परिवर्तन भले ही करवाता हो। मगर स्कूल, अस्पताल और भर-भर भात-रोटी का जुगाड़ जरूर बैठा देता है।

देखो बस बिगहा में। खैरा गाँव में जाना था एक मीटिंग में उनको। हजारी बाग के नजदीक। बस पड़ाव पर कोई लेने वाला नहीं आया तो अकेले चल पड़े थे वह। अब चल क्या पड़े, चल रहे हैं तो चल ही रहे हैं। पहले रास्ता खत्म हुआ, फिर पगडंडी भी जवाब दे गई। अब दोनों ओर जंगल, पहाड़, पोखर... चार घंटा में तीन-चार कोस जमीन चल लिए। न कोई प्राणी दिखे, न दूर-दूर तक किसी गाँव का अता-पता। मन ही मन बोले, 'आज फँसे बेटा दुलारी। हलर-हलर भी बड़ी करते हो। का जरूरत था जंगल में अकेले घुसने का? अब खोजो रास्ता। दोपहरिया ढल गया। साँझ होने को आया। जंगली जानवरों का भय अलग से सताने लगा।

थककर एक जगह सुस्ताने लगे वह। हिम्मत बटोरकर चढ़े एक पहाड़ी पर। पहुँचे किसी तरह ऊपर तो फुनगी पर से एक गाँव नजर आया। माचिस की डिबिया जैसे छोटे-छोटे मकान। खुशी के मारे काँपने लगा पूरा शरीर। लगा छलाँग लगा दें वहीं से। क्षण भर में सारी सुस्ती और थकावट दूर हो गई। सोचा, यह खैरा गाँव है। मगर वह तो सड़क से दो-ढाई किलोमीटर की दूरी पर था। और यहाँ तो दिन भर चलते रहे थे वह। जो हो मानुष जात तो मिला। न मिले भात रोटी, जान बचाने के लिए जगह तो मिलेगी। बढ़ गई कदमों की गति कुछ और।

गाँव के मुहाने पर ही भौंचक्के रह गए वे। देखते क्या हैं कि एक शानदार गिरजाघर। झक-झक सफेद दूध के पेफन सा। फिर और आगे बढ़े तो संत जोसेफ स्कूल का बोर्ड पढ़ने को मिला। वहीं पर एक अस्पताल भी। दंग रह गए वह। किसी फादर स्टेन के नाम से था वह अस्पताल। सुना था उन्होंने भी कि उड़ीसा में दो छोटे-छोटे मासूम बच्चों के संग जला दिया था उनको... जिंदा। मन डूबने लगा था दुलारी का। हे भगवान... क्या यही लोग लाएँगे भारत में राम राज? अभी तो इ हाल है। अगर सच्चे में राम राज आ गया तो कितने स्टेन को जलाएँगे ये लोग।

जब चेते तो मालूम हुआ कि यह तो बसबिगदा गाँव है। यहीं मिले फादर विलियम। खूब बतियाए उनसे। तनिक देर में मन से लेकर पेट तक में घुस गया वह आदमी।

खूब आवभगत हुआ। पता चला, पूरा गाँव ही ईसाई है। बहुत समय नहीं। पिछले पाँच-सात बरस के अंदर हुआ है सब चकाचक। एक उनका गाँव है। काहे नहीं जलन होगा मन में? बनने दो जीवन को जान, जानकी को जेनिथ... किरण को क्रिस्टोना। कुछ तो किरण फैलेगा!

तो भैया, मिशनरी का बात अलग है। उस दिन मन ही मन फैसला कर लिया था उन्होंने कि फादर विलियम को न्यौता देंगे कभी मिदनी आने का। और यह भी विचार किया कि बनना है तो बनेंगे ईसाई ही। बौद्ध हो जाने से का होगा? आसमान से गिरे, खजूर में लटके। वही दलिद्दरी और वही भुखमरी। इ तो अभियो चालू है। बेटा अलग कोसता है कि कालिवरी में रहके कुछ भी नहीं किए। जवान बेटी ताड़ जैसी लंबी हुई जा रही है, सो अलग। और घरवाली! ...कुछ टूटने लगा है दुलारी के अंदर। दो समय का भोजन और साल में दो सूती साड़ियों के अलावा कभी कुछ दिया हो, कभी कुछ किया हो उसके लिए, याद नहीं आता। खाता-खाली ही मिलता है।

फिर चेतते हैं दुलारी। सच्चे कह रहे थे उस दिन लंगटा बाबा कि मन से अधिक चंचल संसार में कुछ भी नहीं। इसको जीतो तो समझो सारा संसार जीते। दिमाग था किस काम पर और चला गया किस काम पर। उन्होंने घूमकर चनेसर की ओर देखा। चबूतरे को सुधार कर वह कब का जा चुका था। शायद फूल का प्रबंध करने।

सफेद कपड़े पर लिखा, 'अंबेदकर जयंती समारोह' दूर से ही दिखाई पड़ रहा था। मंडाल पंडाल सा सज रहा था। सामने टेबुल, कतारबद्ध कुर्सियाँ... और बड़ा सा फोटो बाबा अंबेदकर का। भाषण यहाँ से देंगे सब। यहाँ माइक और वहाँ पर चोंगा। उत्साह से फिर गरमाए वह। आज वैसे ही हाट का दिन है। जो बगल ही में लगता है। नहीं भी तो चार-पाँच सौ आदमी जरूर जमा होंगे। जरा मंत्री जी को भी लगना चाहिए, हाँ आए हैं किसी सभा में। कि गांधी जयंती के अलावा भी कोई जयंती मनाया जाता है। मनाया जा सकता है। उसी धूमधाम से।

मंत्री जी से तिना काम भी लेना है। सबसे पहले इसी स्कूल का जीर्णोद्धार करवाना है। तीन-चार गाँव से बच्चे यहाँ पढ़ने आते हैं। और कुल कोठरी हैं तीन। एक कोठरी में दो-दो कक्षाएँ लगती हैं। बरसात में चू-चू कर वह भी नदी जैसा बहने लगता है।

इसलिए बच्चे यहाँ बजाए ग्रीष्मावकाश के वर्षावकाश मनाते हैं। बैंच की जगह ईंट पर बैठते हैं। ऊपर घाट को ढलाई कर दो भागों में बाँटना है। एक तरफ जनाना, दूसरी तरफ मर्दाना। अब सबके घर में स्नानघर तो हैं नहीं। हैं भी तो पानी नहीं। बड़जातियन की मेहरारू भी घाट पर ही स्नान करने आती हैं। कितनी बेपदर्गी होती है। लौंडन को देखो तो किसी न किसी बहाने उधर ही टकटकी लगाए रहते हैं। कोई फिल्मी गाना गा रहा है तो कोई सीटी बजा रहा है। फिर हाट जाने वाला पुलिया भी दरक गया है। इसी बरसात भर का मेहमान है वह भी। वह भी टूटा तो फिर डेढ़ कोस घूमकर जाना होगा बाजार हाट करने। हाँ, इ यह सब ज्ञापन में देना है। लिखा गया है कागज में। मंत्री जी को ज्ञापन सौंपने का काम चनेसर का है। और कौन-कौन सा काम किसके जिम्मे है, कुर्ते की जेब से लिस्ट निकालकर आश्वस्त हो जाना चाहते हैं वह।

स्वागत भाषण - बासदेव

संचालन - बालेश्वर उर्फ बालो

ज्ञापन - चनेसर

सभा अध्यक्ष - श्री कामता प्रसाद सिंह

धन्यवाद ज्ञापन - सरजू तुरी

मुख्य वक्ता - मास्टर सदानंद पांडेय

अन्य वक्ता - रामबदन, हरमू, सतीश नाई, बासदेव, बालेश्वर

सभी नामों पर एक बार फिर नजर दौड़ाते हैं वह। सभी टोले का प्रतिनिधित्व हो रहा है कि नहीं। कहीं ऐसा न हो कि कोई छूट जाए। समिति के गठन के समय ऐसा ही तो हुआ था। कैसे तो राँची के एक अखबार में गठन का समाचार छप गया। पर बैठक में भाग लेने वाले हरमू और बालेश्वर का नाम छपा ही नहीं। बमककर दोनों संगठन छोड़ने की धमकी देने लगे। सो इस बार ध्यान रखा गया है इसका भी। बाकायदा निमंत्रण देकर बुलाया गया है पत्रकार बाबू को। आते होंगे। आते का होंगे बल्कि आ गए हैं। पूरा मजमा चला आ रहा है यह तो। कुछ गाड़ियाँ भी हैं धूल के पीछे।

धूल का गुबार छँटता है तो मंच पर दिखाई पड़ते हैं दुलारी। पहली कतार में मंत्री जी, उनके अगुआ पिछुवा और दूसरे अधिकारीगण बैठ चुके हैं। उसके पीछे समिति के पदाधिकारी। फिर गूँजती है उनकी आवाज, शोर-शराबा और कोलाहल के बीच, 'साथियो, जैसा कि आप लोग जानते हैं आज चौदह अप्रैल है बाबा अंबेदकर का जन्म दिवस। आज उन्हीं को याद करने हम लोग यहाँ इकट्ठा हुए हैं। मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि आज अंबेदकर जयंती मनाने भर से ही हमारा काम चलने वाला नहीं है। लोग भले ही दलितों पर जुल्म और अत्याचार की बात करते हैं, मगर हमको अपना गिरेबान में झाँककर देखना होगा कि हम खुद कितना सचेत हैं, कितना जागरूक हैं। साँझ होते ही हम पहुँच जाते हैं ताड़ीखाना में नशा करने। हमको... हमको...'

आवाज माइक में अटक सी गई। दुलारी पासवान की नजर मुख्य वक्ता सदानंद पांडेय पर पड़ी जो धोती सँभाले सरपट मंच की ओर भागे चले आ रहे थे।

हे भगवान! कहाँ बैठेंगे पंडित जी। कुरसी तो एक्को खालिए नहीं है। पहले ही कम आया है कुरसी। एक बार आपाधापी मच चुका है ऊपर बैठने को लेकर। बड़ी मुश्किल से वह कुछ लोगों को नीचे दरी पर बैठने के लिए राजी कर सके हैं।

अब इ पांडेय जी, आना ही था तो समय पर आते। उनका ध्यान माइक की ओर गया। पगलाया सा, 'बाबा साहब पढ़ने के लिए विलायत गए। शिक्षा... संगठन और संघर्ष का मार्ग...'

पंडित जी मंच की सीढ़ियाँ चढ़ चुके हैं।

'...सबसे पहले हमें शिक्षा चाहिए...!'

नीचे दरी पर बैठने से पंडित जी छुवा तो नहीं जाएँगे। फिर उनकी नजर नीचे जाते हुए बालेश्वर पर पड़ी जिसे संचालन करना था सभा का। बैठ गया है नीचे जा कर दरी पर। अपने उसी सनातनी अंदाज में। घुटनों को सीने तक लाकर। मतलब अब सभा का संचालन उन्हीं को करना होगा।

'हाँ तो साथियो, अब समय आ गया है उन शक्तियों को पहचानने का जो हमारे विरोधी हैं। जो साजिश रच रहे हैं। ऊपर से वह हमारे हितैषी हैं पर भीतर से दुश्मन। पहले हमें पढ़ने लिखने से रोका गया, अब हमारे बच्चे पढ़ लिख रहे हैं तो इन लोगों ने एक नया चाल चल दिया है। जगह-जगह इंगलिश मीडियम स्कूल खुल गया है। तो बताइए इ हमारा गांधी स्कूल और हमारे बच्चे कर सकते हैं मुकाबला शहर के स्कूलों का? वही किस्सा हुआ न कि तुम डाल-डाल तो हम पात-पात...'

पात-पात के दूसरे पात पर पहुँचते-पहुँचते दुलारी एक बार फिर अटक गए। गाँव के भूतपूर्व मुखिया अलखदेव मंच पर आते दिखे। हाथ में थैली भी है। शायद हाट बाजार करके आ रहे हैं। घघराहट और घबराहट के बाद लाउडस्पीकर चीखता है फिर, 'हाँ तो मित्रो, संघर्ष का एक मोर्चा यहाँ भी खुल गया है।'

अब लो चनेसर चला जा रहा है। मन ही मन उबल पड़े दुलारी। लगा, अब नियंत्रित नहीं कर पाएँगे स्वयं को। अभी थोड़ी देर पहले कैसा टाँय-टाँय कर रहा था। कहाँ तो ज्ञापन देने वाला था मंत्री को। और झट से उठ गया भूतपूर्व मुखिया को सामने देखकर। अरे तुम क्या कम हो उमर में निरंजन सिंह से, जो बैठ नहीं सकते उनके सामने।

जाते-जाते चनेसर ने उनको कातर दृष्टि से देखा, जैसे कहना चाहता हो, इ निरंजन बाबू नहीं... हमारे मालिक हैं, हम बेगार खटते हैं इनखर!

माइक उनको साँप के फन सा लगा। डसने के लिए तैयार। किसी तरह उन्होंने आक्रमण किया उस पर अपनी पूरी शक्ति को इकट्ठा कर, 'आरक्षण बाबा अंबेदकर की छोड़ी हुई विरासत है जो पूरे भारत के दलितों के लिए वरदान है। मगर पहले हमको इसका काबिल बनना होगा। कोलवरी में हम अपने भाइयों को देख चुके हैं। मियाँ-बीवी दोनों मिलकर कमा रहे हैं। दस बारह हजार वेतन उठा रहे हैं। मगर न रहने का ढंग न खाने-पीने का शऊर। बच्चन को किताब-कलम से कोई वास्ता नहीं। इसको... इसको... इसको...'

ग्रामोपफोन की सुई फिर फँस गई। मंत्री जी के ड्राइवर और अंगरक्षक चले आ रहे थे मंच की ओर। लघु दानवों जैसा डील-डौल सभी का। मूँछों से अटा हुआ चेहरा। डगमगाते कदमों से वो सीढ़ी पर गिरते-गिरते बचे। दुलारी पासवान के पास से गुजरे तो बासी ताड़ी का भभका नथुनों में भर गया।

बची हुई कुरसियाँ भी खाली होने लगीं। इस बार सबसे पहले सरजु तुरी, जिसे धन्यवाद ज्ञापन करना था, उठा और मंच से एक निर्वासित की तरह सिर झुकाए चलता बना। अभी इस मसोस से उबरे भी नहीं थे कि बासदेव दिख गया। माइक, सभा और भाषण को भूलकर वह उसी को देखने लगे लगातार। अपलक।

लोग अहमक की मुद्रा में खड़े दुलारी पासवान को देखते हैं। माइक पर हाथ रखकर वह जैसे फट पड़ना चाहते हैं। मगर आवाज है कि गले में ही भरभराकर दम तोड़ जाती है, 'बासदेव, तुम हमारे अध्यक्ष हो, अंबेदकर कल्याण समिति के अध्यक्ष, तुमको अभी स्वागत भाषण देना था। कुछ ख्याल है इस पद की गरिमा का। कहाँ तो बार-बार नक्सली हो जाने की धमकी देते हो। यही कलेजा, यही साहस लेकर बनोगे नक्सली!'

मगर कहाँ सुन पाता है बासदेव। वह गया तो बस गया।

इसी बीच पता नहीं कब जय भारत और जय भीम कह चुके थे वह। और अब नाव के पाल की भाँति खड़े थे मंच पर। जिसे खड़े ही रहना था पूरी यात्रा तक। सभा के अंत तक। तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा था वातावरण। जैसे पक्षियों के कई झुंड एक साथ फड़फड़ाए हों। मगर वह हैं न हिल पाते हैं अपने स्थान से न बोल पाते हैं। बर्फ की तरह अंदर ही अंदर जमते गए वह।

बासदेव... सरजू तुरी, रामबदन, बालेश्वर, सतीश, हरमू... हरख लाल, उदन, कतार में बैठ चुके हैं। सभी मंच के बिल्कुल सामने। दरी पर ही। दरी भी कहाँ नसीब हुआ है सबको। धूल में ही उकड़ू बैठे हैं कुछ लोग। मैले कुचैले कपड़ों को जैसे धोने के बजाए वहीं फेंक गया हो कोई। ऐसी ही काया। क्षण भर के लिए दुलारी पासवान की नजर अब माइक सँभाल चुके कामता सिंह से लड़ गई। वही आँखें, वही रोब... वही चमक... बड़े ठाकुर वाली। और देखो पीछे से लगते भी हैं उन्हीं की तरह। चाँदी पर का हल्का सफेद

बाल... कान के लौ... गरदन पर की गाँठें... सब उन्हीं जैसे हैं। और वह कुछ कहते हैं माइक में। फिर जैसे चीख पड़ता है लाउडस्पीकर कि, 'हाँ अब शुरू करो बैठकी।'